THE ECONOMIC TIMES

Date:02-05-24

Mystery of MGNREGA Demand Asymmetry

ET Editorials

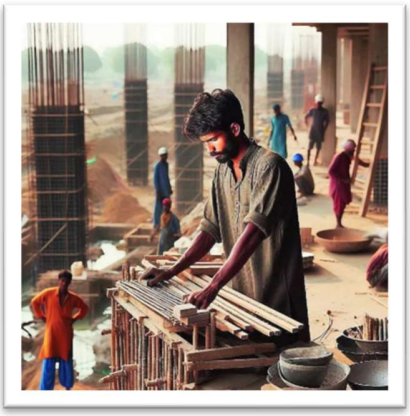

Popularity of the MGNREGA scheme in poorer states is wellknown. But a new data analysis reported in this paper has thrown up an interesting fact: Tamil Nadu, one of India's most industrialised states, takes a much larger share of funds under the rural employment guarantee scheme than Bihar, one of the country's poorest and more populous states. Over the past five years, TN accounted for 10-15.3% of India's annual work demand submitted by individuals under MGNREGA, while Bihar made up for 4-5.7%. As for person-days generated, TN's annual share has been 8.6-13.1% over the same period, compared to Bihar's 5-8%. Other progressive southern states like Andhra Pradesh, Karnataka and Kerala have also been cornering larger shares of MGNREGA funds than states with similar populations or workforces.

What accounts for this unintended asymmetry? One, an efficient administrative set-up has not just streamlined the job demand-to-payment process better, but it has also — as the TN case study shows — managed to execute a geographical exercise where labourers can find work at a place not far from their homes, thereby reducing the need to travel far, never mind migrate. The other factor is higher participation by women. 80% of active MGNREGA workers in TN are women, while in Bihar, the corresponding figure is about 54%. The high number of female workforce participation in MGNREGA work can be attributed to decades of the southern state's progressive politics, policies and supportive ecosystem.

While GoI should delve deeper into this 'north-south' asymmetry, laggard states must learn how to utilise the scheme better and weed out roadblocks in MGNREGA implementation. Essentially, make it work better for those who need this economic cover.

दैनिक भास्कर

Date:02-05-24

आम वोटर चुनाव को लेकर उत्साहित नहीं है

राजदीप सरदेसाई, (वरिष्ठ पत्रकार)

चुनाव के दो राउंड हो चुके हैं, पांच राउंड बाकी हैं। लेकिन बड़ा सवाल यह है कि टीवी स्टूडियो के भीतर और बाहर लगातार ढोल की थाप के बावजूद लोकतंत्र के 'उत्सव' में कम मतदान क्यों हो रहा है? गर्मी, फसलों की कटाई, सप्ताहांत की लंबी छुट्टियां आदि केवल आंशिक रूप से ही मतदान में गिरावट की व्याख्या कर सकती हैं। सच यह है कि देश के कई हिस्सों में लोकतांत्रिक-भावना में गिरावट आई है, जिससे एक आम वोटर अपने सामने मौजूद विकल्पों को लेकर उत्साहित नहीं महसूस करता है।

चुनाव से पहले का शोरगुल 'अबकी बार 400 पार' के नारे पर केंद्रित था। ऐसा माना जा रहा था जैसे नतीजों का फैसला पहले ही हो चुका है और अब केवल यह देखना बाकी है कि 1984 में राजीव गांधी की 414 लोकसभा सीटों का रिकॉर्ड टूटेगा या नहीं। लेकिन जैसे-जैसे चुनाव-अभियान आगे बढ़ रहा है, दोनों ही पक्षों को अचानक राज्य-दर-राज्य चुनावी-संघर्ष की 'लहर-रहित' जमीनी हकीकत का सामना करना पड़ रहा है।

यह अकारण नहीं है कि पहले दौर के मतदान में औसतन 3 प्रतिशत की गिरावट के ठीक एक दिन बाद भाजपा ने अपने सांप्रदायिक-सुर तेज कर दिए थे। कहां तो 2047 तक 'विकसित भारत' के वादे के साथ चुनाव-अभियान में प्रवेश किया गया था और कहां डर की राजनीति की जाने लगी। लेकिन जहां डर नुकसानदेह और विनाशकारी हो सकता है, वहीं उम्मीदें सकारात्मक और रचनात्मक होती हैं।

जब कांग्रेस के घोषणापत्र की तुलना मुस्लिम लीग से की जाती है तो लगने लगता है कि 'सबका साथ, सबका विकास' की नेक बातें केवल दुनिया की स्वीकार्यता अर्जित करने के लिए ही हैं। लेकिन अगर भाजपा ने लंबे समय से निर्मित अपनी सांप्रदायिक छवि को पुनर्जीवित कर दिया है तो कांग्रेस भी काल्पनिक भय की शिकार हो रही है। कांग्रेस नेता राहुल गांधी ने अपनी रैलियों में संविधान की प्रति लहराते हुए चेतावनी दी है कि अगर भाजपा सत्ता में आई तो वे दलितों, आदिवासियों और ओबीसी के लिए आरक्षण खत्म करने के लिए संविधान में संशोधन करेंगे।

जबकि औसत मतदाता आजीविका के बुनियादी सवालों से घिरा है और उस पर ये तमाम चुनावी बातें बेअसर साबित हो रही हैं। अगर आप देश की यात्रा करें तो पाएंगे कि नेताओं और नागरिकों के बीच एक स्पष्ट अलगाव है। पिछले पांच साल कई भारतीयों के लिए कठिन रहे हैं : महामारी, लॉकडाउन, महंगाई, नौकरियां छूटना, बेरोजगारी, घटती आमदनी आदि ने कोई ऐसा माहौल नहीं बनाया है कि मतदाता 'फील-गुड' करें। दुनिया में 'उभरता हुआ भारत' पांच सितारा समारोहों में भले ही चर्चा का विषय हो, लेकिन गर्मी और धूल से जूझते ग्रामीण भारत में आज भी पानी का टैंकर आठ दिनों में केवल एक बार आता है। एक तरफ उत्साहपूर्ण बयानबाजी और दूसरी तरफ जीवन की कठोर वास्तविकताओं के इस अंतर ने ही कई मतदाताओं को मतदान-प्रक्रिया के प्रति उदासीन बना दिया है।

महाराष्ट्र का ही उदाहरण लें। पिछले पांच वर्षों में किसी और राज्य ने उसके जैसी राजनीतिक उथल-पुथल नहीं देखी है। वहां पांच साल में तीन मुख्यमंत्री बदले हैं, गठबंधन बने और टूटे हैं और परदे के पीछे सौदेबाजियां चलती रही हैं। यहां तक कि सभी पार्टियों के राजनीतिक कार्यकर्ता भी अब चुनाव-प्रणाली को लेकर उत्साहपूर्ण नहीं दिखते हैं। जब नेता हर कीमत पर सत्ता में बने रहने के लिए लगातार समझौते कर रहे हों और कल के कट्टर विरोधी आज के गठबंधन सहयोगी बन जाते हों तो एक वफादार कार्यकर्ता जमीन पर मेहनत क्यों करेगा? अवसरवादिता ने कार्यकर्ताओं में राजनीति को लेकर संशय पैदा कर दिया है।

एक तरफ राजनेता पहले से ज्यादा समृद्ध होते गए हैं, वहीं दूसरी तरफ औसत से कम बारिश के कारण बढ़े कृषि संकट ने विषमता के विकट विरोधाभास रच दिए हैं। मुंबई के सुपर-रिच जहां अपने स्विमिंग पूल में नाश्ता कर रहे होते हैं, वहीं ग्रामीण महाराष्ट्र में टैंकर माफिया 200 रुपए प्रति बाल्टी की दर से पानी बेचते हैं। ऐसे में क्या आश्चर्य कि राज्यभर के ग्रामीण इलाकों में मतदाताओं का अधूरे वादों से मोहभंग हो चुका है। तब सवाल उठता है कि मतदाताओं की इस थकी हुई मानसिकता से चुनावी तौर पर किसे फायदा या किसे नुकसान होगा? भाजपा को पूरा भरोसा है कि एक ऐसे नेता के नेतृत्व में उनकी बेहतर चुनावी 'संगठन' मशीन जीत की हैट्रिक सुनिश्चित करेगी, जिस पर जनता को अभी भी उनके प्रतिस्पर्धियों की तुलना में कहीं अधिक भरोसा है। कांग्रेस इस उम्मीद पर टिकी है कि मतदाताओं की उदासीनता उसे कम से कम करीबी मुकाबले वाली सीटों पर लड़ने का मौका जरूर देगी। लेकिन भारतीय लोकतंत्र का संकट 'भाजपा बनाम विपक्ष' से कहीं आगे तक जाता है। यह धारणा बढ़ती जा रही है कि चुनाव चाहे कोई भी जीते, मतदाताओं की हार ही हो रही है। ऐसे में जो लोग मतदान नहीं कर रहे हैं, वो भी शायद एक कड़ा संदेश ही दे रहे हैं कि : हमारे वोटों को हल्के में न लें!

बिज़नेस स्टैंडर्ड

Date:02-05-24

कराधान की दृष्टि से सही विचार नहीं

अजय शाह, (लेखक एक्सकेडीआर फोरम में शोधकर्ता हैं)

देश में इस समय यह लोकलुभावन मांग जोरों पर हैं अमीरों से संपत्ति छीनकर उसे गरीबों में बांट दिया जाए। यह रास्ता निरंतर गरीबी और आर्थिक नाकामी की ओर ले जाता है। इन दिनों संपत्ति कर और विरासत कर के रूप में जिन दो विषयों पर चर्चा की जा रही है वे सार्वजनिक वित्त के क्षेत्र में सुपरिचित विषय हैं। पूरी दुनिया में इनी उपयोगिता कम होने को लेकर विश्लेषण हुए हैं। भारत में भी इन्हें लगाने की कोशिश की जा चुकी है। इन्हें दोबारा नहीं लगने देना चाहिए।

आमतौर पर एक दशक में एक बार भारत में संपत्ति और विरासत पर कर का मुद्दा बहस में आता है। ये मुद्दे 19वीं सदी से ही विचार में आते रहे हैं और कई देशों ने इन्हें अपनाने का प्रयास भी किया। अधिक आजादी हासिल करने के लिए इन करों को हटाए जाने के साथ ही अच्छी खासी समृद्धि हासिल हुई है।

भारत में 1953 से 1985 तक संपदा शुल्क लगता था। इसकी दरें 85 फीसदी तक थीं लेकिन व्यवहार में संग्रह की राशि बहुत कम होती थी। राजीव गांधी ने इसे समाप्त किया। संपदा या विरासत पर कर लगाने की व्यवस्था कई देशों में आज भी लागू है। औसतन 24 ओईसीडी देशों में यह कर राजस्व में 0.5 फीसदी का हिस्सेदार है। सार्वजनिक प्रशासन की दृष्टि से देखें तो इसमें मामूली राजस्व के लिए काफी जटिलताओं का सामना करना होता है।

संपत्ति कर के मामले में संभावनाएं और भी कमजोर हैं। भारत में इसकी शुरुआत 1957 में की गई थी। इससे 2012-13 में 800 करोड़ रुपये का राजस्व जुटाया गया। इसे 2015 में समाप्त कर दिया गया। चार ओईसीडी देशों में यह लागू है और इससे नाम मात्र का राजस्व आता है।

इन्हें हासिल करने की प्रक्रिया में कीमत चुकानी होती है: मसलन देश में समझदारी भरी कर व्यवस्था लागू करने के बुनियादी काम पर ध्यान नहीं दे पाना। भारत में कराधान काफी ऊंचे स्तर पर है। देश में व्यक्तिगत आय कर की उच्चतम दर 42 फीसदी है। कॉर्पोरेट आय कर 25 फीसदी और अधिकतम जीएसटी की दर 18 फीसदी है।

आयात, गैर टैरिफ अवरोध आदि पर कर स्थिर गति से बढ़ रहा है। अगर 1991 के बाद के दौर से तुलना करें तो हमारे यहां आयात कर की दर काफी अधिक है। इससे अत्यधिक उच्च कर वाला माहौल तैयार होता है और कर अधिकारियों को मनमाना अधिकार प्रदान करता है। कर नीति में हमारी प्राथमिकता संपदा कर या विरासत की चुनौती से जूझने के बजाय कर नीति और कर प्रशासन के क्षेत्र में बेहतर काम की होनी चाहिए।

एक अर्थशास्त्री ऐसा व्यक्ति होता है जो किसी काम के व्यवहार में सफल होने पर यह देखता है कि क्या यह सिद्धांत में भी सफल है। क्या कोई अनुभव केवल चुनिंदा दुर्घटनाओं पर आधारित होता है या फिर कोई अवधारणात्मक आधार होता है जिनसे बचा न जा सके। ऐसे में तह तक जाकर यह सवाल पूछना सही होगा कि विरासत कर और संपदा कर का प्रदर्शन सही रहेगा या नहीं? लोग प्रोत्साहन पर प्रतिक्रिया देते हैं। अधिक कराधान को लेकर पहली प्रतिक्रिया कम काम के रूप में सामने आती है। अगर विरासत और संपदा कर से दंडित किया जाएगा तो लोग संपत्ति बनाने के लिए कम काम करेंगे। यह देश के लिए नुकसानदायक होगा।

दूसरी प्रतिक्रिया है कर किफायत ढांचे में नई जान फूंकना। अपने अंतिम समय में वसीयत बनाने के बजाय लोग अपनी परिसंपत्ति जिंदा रहते ही चुने हुए लोगों को हस्तांतरित कर देंगे। यह सरकार की राजस्व प्राप्ति की क्षमता को बाधित करते हुए उनके व्यवहार में विसंगति लाएगा।

कई माता-पिता कर से बचने के लिए बच्चों को जल्दी संपत्ति देकर अधिकार खोने के बजाय अप्रत्याशित निधन के पहले के वर्षों में बार-बार वसीयत को बदलना पसंद कर सकते हैं। तीसरी प्रतिक्रिया है कारोबारी गतिविधियों को किसी मित्रतापूर्ण क्षेत्र मसलन दुबई, श्रीलंका, केमैन आइलैंड, सिंगापुर या आयरलैंड में स्थानांतरित करना। यह बात कर राजस्व को प्रभावित करती है।

अगर भारत की अर्थव्यवस्था एक खुली अर्थव्यवस्था होती तो कुछ भी गलत नहीं होता। एक व्यक्ति आयरलैंड में कर चुकाता और भारत में कारोबारी गतिविधियां संचालित करता। परंतु भारत खुली अर्थव्यवस्था वाला देश नहीं है। हमारे यहां सीमा पार गतिविधियों को लेकर कई दिक्कतें हैं। चालू खाते और पूंजी खाते में परिवर्तनीयता अनुपस्थित है। ऐसे में एक बार जब कोई व्यक्ति अपना कर आवास देश के बाहर कर लेता है तो एक तरह के अलगाव की भावना घर कर जाती है तथा देश में संगठन बनाने की भावना कमजोर पड़ती है।

भारत का भविष्य करीब 10,000 कंपनियों के हाथ में है और यह बेहतर है कि भारतीय राज्य को इस प्रकार तैयार किया जाए कि वह इन नेतृत्वकारी टीम में से प्रत्येक की ऊर्जा और महत्त्वाकांक्षा का पोषण करे। संक्षेप में कहें तो संपत्ति कर

और विरासत कर कमजोर प्रदर्शन करते हैं क्योंकि वे लोगों के व्यवहार को बाधित करते हैं जिससे जीडीपी को नुकसान पहुंचता है।

लोगों के व्यवहार में आई विसंगति कर राजस्व को प्रभावित करती है। ऐसे में ये कर दुनिया के सबसे बुरे उदाहरण पेश करते हैं। व्यवहारगत विकृतियां जीडीपी को प्रभावित करती हैं, एक जटिल कर अफसरशाही तैयार होती है जो भारत जैसे देश में कर अधिकारियों को मनमाना अधिकार दे सकती है और कर राजस्व में कमी आती है।

यह बहस पुनर्वितरण बनाम वृद्धि की व्यापक पहेली में सटीक बैठती है। हमें ऐसी बहसों में अपना ध्यान नहीं भटकाना चाहिए कि एक पिज्जा किस प्रकार बांटा जाएगा। भारत एक निम्न मध्य आय वाला देश है। हमारे सामने एक बड़ी चुनौती है और वह है आगामी 100 वर्षों तक वृद्धि को बरकरार रखना तथा विकासशील राज्य की क्षमता बनाए रखना।

सन 1947 में गरीब रहे देशों में से केवल चार आज उन्नत अर्थव्यवस्था वाले देश बन सके हैं। विकास की यात्रा एक कठिन यात्रा है जहां सफलता की कोई गारंटी नहीं। ऐसे में वर्ग को लेकर जंग छेड़ना निजी गतिशीलता पर बुरा असर डालेगा और राज्य की क्षमता को प्रभावित करेगा।

लैंट प्रिचिट कहते हैं कि दुनिया भर में गरीबी की दर में 99 फीसदी अंतर को केवल एक आंकड़े से समझा जा सकता है और वह है: औसत आय। अगर हम गरीबी दर में बदलाव करना चाहते हैं तो हमें औसत आय पर ध्यान देना होगा। कर, सामाजिक कार्यक्रम आदि के माध्यम से पुनर्वितरण के सरकार के सभी प्रयास शेष एक फीसदी में बैठते हैं और कम वृद्धि की कीमत पर आते हैं।

जनसत्ता

Date:02-05-24

मुसीबत बनता आबादी का असंतुलन

अखिलेश आर्येंदु

आज तमाम विकासशील देश बढ़ती आबादी और संसाधनों की कमी की वजह से परेशान हैं। दूसरी तरफ, विकसित देशों में घटती जन्मदर, खासकर नौजवानों की घटती आबादी से आर्थिक और सामाजिक ताने-बाने पर पड़ रहे असर से कई तरह की समस्याएं पैदा हो गई हैं। 2022 के संयुक्त राष्ट्र के आंकड़ों के मुताबिक पिछले दस वर्षों में एक करोड़ से ज्यादा आबादी वाले आठ देशों की आबादी कम हो गई, जिनमें ज्यादातर देश यूरोप के हैं। जापान में पिछले कई वर्षों से जनसंख्या में कमी और बुजुर्गों की बढ़ती आबादी की वजह से सामाजिक और आर्थिक हालात पर असर पड़ा है। इससे कई तरह के असंतुलन पैदा हो गए हैं।

'द लैंसेट' में 20 मार्च, 2024 को प्रकाशित अध्ययन के मुताबिक भारत में आबादी का असंतुलन लगातार बढ़ रहा है। लड़कियों की जन्मदर घटने के कारण सामाजिक ताने-बाने पर बुरा असर पड़ रहा है। भारत में जीवन शैली में बदलाव की

वजह से युवा शादियां विलंब से करने लगे हैं, जिससे संतान होने में देर हो रही है, जिसका असर बच्चों के पालन-पोषण, उनकी शिक्षा और सेहत पर पड़ता है। इससे सामाजिक ताना-बाना बिगड़ रहा है। रपट के मुताबिक 1950 यानी चौहत्तर वर्ष पहले तक भारत की प्रजनन दर 6.2 फीसद थी, जो 2021 आते-आते घट कर दो फीसद से भी कम रह गई। अनुमान के मुताबिक 2050 तक प्रजनन दर घट कर 1.29 फीसद और 2100 में घटते-घटते 1.04 तक पहुंच सकती है। इसे भारत के लिए किसी भी नजरिए से अच्छा नहीं कहा जा सकता है।

गौरतलब है कि प्रजनन दर 2.1 को 'रिप्लेसमेंट लेवल' कहा जाता है। यानी इस दर पर आबादी स्थिर रहती है और इससे कम होने पर घटने लगती है। युवाओं की आबादी घटने का मतलब है, वृद्धों की आबादी में वृद्धि। वृद्धों की आबादी बढ़ने का मतलब है, श्रमशक्ति में कमी आना। यह किसी भी देश के लिए जोखिम की स्थिति हो सकती है। भारत को भी एक या दो दशक बाद श्रमशक्ति में कमी से कई तरह की समस्याओं का सामना करना पड़ सकता है।

विकसित देशों में प्रजनन दर लगातार कम हो रही है, जिससे युवाओं की तादाद कम और बुजुर्गों की बढ़ रही है। यानी जन्म और मृत्यु दर में असंतुलन पैदा हो गया है। अध्ययन के मुताबिक 2030 तक स्पेन, दक्षिण कोरिया, रूस, सिंगापुर और जर्मनी की आबादी घटनी शुरू हो जाएगी। इसके अलावा, भारत, नेपाल, श्रीलंका और म्यांमा की आबादी की रफ्तार भी थम सकती है। अभी कई विकसित देशों में बच्चों की जन्मदर बहुत तेजी से घट रही है। इसमें सिंगापुर और जापान प्रमुख हैं। सिंगापुर में जन्मदर 0.97 फीसद है, जापान में 0.6 फीसद और कोरिया में 0.72 फीसद है।

गौरतलब है कि जापान ज्यादा बच्चे पैदा करने के लिए युवाओं को इनाम दे रहा है। इसके बावजूद, शादी करने वाले युवाओं की संख्या लगातार कम हो रही है। आंकड़े बताते हैं कि जापान में शादी न करने वाले युवाओं की संख्या लगातार घट रही है। वर्ष 2023 में महज चार लाख युवाओं ने शादियां की। इसी तरह सिंगापुर में 2023 में 26,500 युवाओं ने ही शादियां की। इसलिए जापान और सिंगापुर में जन्मदर में लगातार गिरावट आ रही है। सिंगापुर इस समय दोहरे संकट से जूझ रहा है। एक तरफ जन्मदर में बेतहाशा कमी आ रही है, तो दूसरी तरफ देश की बहुत बड़ी आबादी बूढ़ी हो गई है। जन्मदर में यह कमी जापान और सिंगापुर की अर्थव्यवस्था पर सीधे असर डाल रही है।

आबादी के मामले में चीन दुनिया का सबसे बड़ा देश है, उसकी आबादी 2100 तक आज के स्तर से आधी यानी 1.4 अरब से घट कर 77.1 करोड़ रह सकती है। मगर दुनिया के तमाम अविकसित देशों में आबादी घटने के बजाय लगातार बढ़ रही है। इनमें अफ्रीकी देशों के अलावा मुसलिम देश भी शामिल हैं। दुनिया के जिन देशों में जन्मदर बहुत अधिक है, उनको संसाधनों की कमी का सामना करना पड़ रहा है। हालात ऐसे हो गए हैं कि जनसंख्या का घनत्व लगातार बढ़ने के कारण कई तरह की समस्याएं पैदा होती हैं। उन समस्याओं में पीने के पानी, पोषण युक्त खाद्यान्न के अलावा दवाओं और रोजगार की कमी जैसी समस्याएं शामिल हैं। भारत भी ऐसी समस्याओं का सामना वर्षों से कर रहा है, लेकिन पिछले दस वर्षों में पानी, खाद्यान्न और रोजगार पर गौर करने के कारण इनमें कमी देखी जा रही है। फिर भी जनसंख्या घनत्व अधिक होने और जीवन-शैली में बदलाव की वजह से बच्चों के जन्मदर में कमी देखी जा रही है। मगर बूढ़े हो रहे लोगों की संख्या जापान की तरह भारत में भी बढ़ रही है, इस पर तुरंत गौर करने की जरूरत है। वहीं, भारत के पड़ोसी देशों, खासकर बांग्लादेश, म्यांमा से पलायन कर भारत में चोरी-छिपे रह रहे लाखों लोगों की वजह से भी जनसंख्या घनत्व पर असर पड़ा है।

भारत में स्थिर जनसंख्या वृद्धि का लक्ष्य हासिल करना बहुत बड़ी चुनौती है। इसलिए प्रजनन दर में कमी लाने के लिए व्यावहारिक कदम उठाने की जरूरत है। बिहार, उत्तर प्रदेश, हरियाणा, मध्य प्रदेश, झारखंड और छत्तीसगढ़ में बच्चों की जन्मदर काफी अधिक है। इसलिए इन राज्यों को परिवार नियोजन पर अधिक ध्यान देना होगा। इसी के साथ भारत में युवाओं की बहुत बड़ी आबादी बेरोजगार है। इससे जनसंख्या का बहुत बड़ा हिस्सा देश के विकास में बाधा बना रहता है। इसलिए रोजगार की समस्या को प्राथमिकता के स्तर पर हल करने की जरूरत है।

यों तो बढ़ती आबादी पर रोक लगाने और बेरोजगारी की समस्या हल करने के मद्देनजर केंद्र और राज्य सरकारों ने कई कदम उठाए हैं, लेकिन आज भी करोड़ों की तादाद में भारत के युवा बेरोजगार हैं। इसलिए गैरबराबरी की समस्या भारतीय समाज में तेजी से बढ़ी है। भारत एक विकसित देश बने, इसके लिए जरूरी है कि बढ़ती आबादी पर रोक लगाई जाए और सबको शिक्षा और स्वास्थ्य सुविधाएं समान रूप से हासिल हों। गांवों से शहरों की तरफ पलायन को रोकना भी जरूरी है। क्योंकि पलायन से कई तरह की समस्याएं पैदा होती हैं और जनसंख्या असंतुलन लगातार बढ़ता है।

अर्थशास्त्रियों के अनुसार जनसंख्या समस्या का सबसे बेहतर समाधान है कि सेहत और शिक्षा संबंधी सुविधाओं का लगातार प्रसार किया जाए और गुणवत्ता में तेजी लाई जाए। आज जरूरत है स्त्री-पुरुष जनसंख्या संतुलन को बनाए रखने में आ रही बाधाओं को खत्म करने की। इसके लिए सरकार की नीतियों और योजनाओं को आम आदमी का भरपूर समर्थन मिले, ताकि जनसंख्या का असंतुलन न हो और बढ़ती गैरबराबरी की समस्या में कमी लाई जा सके। उम्मीद की जानी चाहिए कि भारत अपनी बेहतर नीतियों और योजनाओं से इस समस्या से कुछ वर्षों में पार पा लेगा।

राष्ट्रीय सहारा

Date:02-05-24

जवाबदेह बनें संस्थाएं

संपादकीय

सर्वोच्च अदालत ने लोक सभा चुनाव से पहले दिल्ली के मुख्यमंत्री अरविंद केजरीवाल की गिरफ्तारी के समय को लेकर प्रवर्तन निदेशालय (ईडी) से सवाल किया और जांच एजेंसी से इसका जवाब मांगा। अदालत ने पांच सवाल पूछे और उनके जवाब लेकर आने का निर्देश दिया। दो सदस्यीय बेंच ने कहा कि स्वतंत्रता बहुत महत्त्वपूर्ण है। आखिरी सवाल गिरफ्तारी के संबंध में है। न्यायिक कार्यवाही के बिना, जो कुछ हुआ उसके संदर्भ में कार्यवाही कर सकते हैं। अदालत ने पूर्व उपमुख्यमंत्री मनीष सिसोदिया के लिए कहा कि पक्ष और विपक्ष में निष्कर्ष हैं। हमें बताएं कि केजरीवाल का मामला कहां है। क्या हम सीमा को बहुत विस्तृत बनाते हैं और सुनिश्चित करते हैं कि जो व्यक्ति दोषी है, उसका पता लगाने के लिए

मानक समान हों। केजरीवाल 21 मार्च से शराब नीति घोटाले के मामले में न्यायिक हिरासत के तहत दिल्ली की तिहाड़ जेल में बंद हैं। केजरीवाल इस गिरफ्तारी से पहले ही सार्वजनिक तौर पर कई मर्तबा दोहरा चुके थे कि मोदी सरकार लोक सभा चुनाव के दौरान उन्हें गिरफ्तार कर सकती है। दिल्ली सरकार के नेता पहले ही जेल में हैं। माना जा रहा है कि आम आदमी पार्टी की लोकप्रियता विभिन्न राजनैतिक दलों के लिए चुनौती बनती जा रही है। सत्ताधारी दल की यह जिम्मेदारी है कि वह अन्य विपक्षी दलों के साथ पूर्वाग्रह भरा बर्ताव करने से बचे। दंड प्रक्रिया संहिता के अध्याय 5 में स्पष्ट प्रावधान है, कोई भी गिरफ्तारी इसके अधीन ही होनी चाहिए। केजरीवाल अपनी गिरफ्तारी और हिरासत को अवैध बता रहे हैं। यह कहना गलत नहीं है कि चुनाव के दरम्यान लगातार गिरफ्तारियां हो रही हैं तथा नोटिस भी थमाए जा रहे हैं या छापे तक डाले जा रहे हैं। दरअसल, केजरीवाल की गिरफ्तारी की टाइमिंग को लेकर सवाल उठ रहे हैं, जिनके उत्तर मिलने चाहिए। यह स्थिति लोकतांत्रिक व्यवस्था के लिए उचित नहीं कही जा सकती। बेशक, न्यायिक व्यवस्था अपनी जिम्मेदारी निभा रही है। सार्वजनिक जीवन में रहने वाला कोई भी राजनीतिज्ञ यदि किसी तरह के घोटाले में शामिल है तो उसे दंडित करने के लिए अदालतें हैं। अदालतोंपर पहले ही लंबित मामलों का दबाव है। उस पर मोदी सरकार लगातार आरोपियों को भाजपा में शामिल कर उन्हें क्लीन चिट देने का काम कर स्पष्ट संकेत दे रही है। यह अपने आप में गलत संदेश दे रहा है। बावजूद इसके अंतिम फैसला तो जनता के हाथ में है, जो मूकदर्शक जरूर है, लेकिन अपना निर्णय समय आने पर देगी।

Live हिन्दुस्तान .com

Date:02-05-24

विवाह की वैधता

संपादकीय

देश की सर्वोच्च अदालत ने हिंदू विवाह पर एक नई व्यवस्था देते हुए कहा है कि अगर अपेक्षित विवाह समारोह नहीं हुआ है, तो हिंदू विवाह अमान्य है। अदालत ने हिंदू विवाह अधिनियम 1955 के तहत विवाह की कानूनी आवश्यकताओं और पवित्रता को स्पष्ट करने की जो कोशिश की है, उस पर पूरी गंभीरता से गौर करने की जरूरत है। इस फैसले को समग्रता में नहीं समझा गया, तो हिंदू विवाह की वैधता को लेकर अक्सर सवाल उठेंगे। न्यायालय ने जोर दिया है कि हिंदू विवाह की वैधता के लिए सप्तपदी (पवित्र अग्नि के चारों ओर सात फेरे) जैसे उचित संस्कार और समारोह जरूरी है। विवाद की स्थिति में समारोह के प्रमाण पेश करना जरूरी है। सात फेरों और समारोह का मूल्य समझाने की यह कोशिश ध्यान देने लायक है। इसमें कोई शक नहीं कि विवाह संस्कार का मूल महत्व पहले की तुलना में कम हुआ है, अब विवाह बहुतों के लिए एक दिखावा, मजबूरी या समझौता भर रह गया है। न्यायमूर्ति बी नागरत्ना ने अपने फैसले में बिल्कुल सही कहा है कि हिंदू विवाह एक संस्कार है, जिसे भारतीय समाज में एक महान मूल्य की संस्था के रूप में दर्जा दिया जाना चाहिए।

हालांकि, विवाह की पवित्रता का आभास समाज में समय के साथ घटा है और उसमें सुधार की जरूरत है। जो लोग विवाह को मात्र एक पंजीकरण मानते हैं, उन्हें चेत जाना चाहिए। उन्हें सात फेरों का अर्थ समझना होगा। सात फेरों का अर्थ समझे बिना हिंदू विवाह को नहीं समझा जा सकता और सर्वोच्च न्यायालय के ताजा फैसले में ऐसी ही समझाइश की कोशिश झलकती है। अदालत ने यह भी साफ किया है कि हिंदू विवाह एक संस्कार है और यह नाच-गाने, खाने-पीने का आयोजन नहीं है। अपेक्षित विवाह समारोह होना चाहिए, उसके बिना मात्र पंजीकरण से विवाह वैध नहीं हो जाता है। दहेज या उपहार का आदान-प्रदान भी विवाह नहीं है और इसे रोकने के लिए कानून भी लागू है। कुल मिलाकर, अगर न्यायालय का संदेश यह है कि फिजूल के तमाशे-दिखावे से बचते हुए विवाह के मूल अर्थ को समझना चाहिए, तो यह सुखद और स्वागतयोग्य है। फिर भी अदालतों को सचेत रहना होगा कि ताजा फैसले के बाद विवाह पंजीकरण का महत्व कहीं कम न हो जाए। असंख्य विवाह बहुत जरूरी होने पर या सुरक्षा की दृष्टि से ही सुनियोजित ढंग से पंजीकृत किए जाते हैं। विवाह पंजीकरण का यह रास्ता अगर बंद न हो, तो समाज में अपेक्षाकृत ज्यादा उदारता बहाल रहेगी।

हिंदू विवाह को लेकर अब ज्यादा स्पष्टता की जरूरत है। पिछले वर्षों में कुछ खास हालात की वजह से अनेक ऐसे अदालती फैसले आए हैं, जिनके बाद विवाह संबंधी नियम-कायदों को सुलझाने की जरूरत बढ़ गई है। मिसाल के लिए, एक फैसला देखिए। इलाहाबाद हाईकोर्ट की लखनऊ पीठ ने पिछले दिनों यह माना कि हिंदू विवाह अधिनियम के अनुसार, हिंदू विवाह को संपन्न करने के लिए कन्यादान का समारोह जरूरी नहीं है। उस फैसले में भी सप्तपदी के महत्व को दर्शाया गया था। मध्य प्रदेश की एक परिवार अदालत के फैसले में महिला पक्ष को यह समझाया गया था कि सिंदूर लगाना एक विवाहित हिंदू महिला का धार्मिक कर्तव्य होता है। यह सवाल पूछा जा सकता है कि धार्मिक कर्तव्य बताने या तय करने का काम किसका है? वाकई, बदलते समय में विवाह के तमाम पुराने प्रतीकों और कर्मकांडों पर पुनर्विचार की जरूरत आन पड़ी है।